मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक फलक पर कबीर

डॉ. (श्रीमती) रीना भट्टाचार्य 'दीप्ति'

12 बी/114, आवास विकास कॉलोनी, सिकन्दरा, आगरा

तुम जिन जानौ गीत है, यह निज ब्रह्म विचार रे।
केवल कहि समुझाइया, आतम साधन सार रे।

कबीर का व्यक्तित्व विराट था। सच्चे मनोवैज्ञानिक की भूमिका में उन्होंने राजनीतिक उथल-पुथल एवं राजाओं की शक्तिहीनता से उत्पन्न अनास्था एवं उदासीनता से उपजे हुए उपेक्षित मानव समाज को अपने कटु-चिंतन द्वारा वेद (कतेब) (कुरान) देवी-देवता, मूर्तिपूजा आदि पर गहरी चोट करते हुए धार्मिक अन्तर्विरोधों एवं सामाजिक विश्रृंखलताओं में समन्वयात्मक एवं एकता के मार्ग से युग-युगों तक ससीम और असीम के मिलन बिन्दु की ओर मानव-मन की यात्रा को आलोक पथ दिया।

"अमरवेल जो छिन-छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगि-जुगि जीवै।"

मन की अन्तःश्चेतना समाज की बाह्य चेतनाओं का प्रतिफलन बन दर्शन की भावभूमि में यथार्थ हो जाती है। उनके हठयोगी साधना में जैसे पिंड में ब्रह्माण्ड समाहित है उसी प्रकार अपने ससीम व्यक्तित्व में असीम का विराटत्व समाहित किए हुए उन्होंने कुंडलिनी शक्ति द्वारा व्यष्टिपरक साधना का पथ दिखाया है। समाज में प्रचलित अंधविश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों एवं पाखंडों पर निर्मम प्रहार कर व्यष्टि से समष्टिपरक साधना का आदर्श प्रस्तुत किया है। कबीर की आध्यात्मिक अनुभूतियों ने ही सच्चे मन से आत्मा का दर्शन बैखरी वाणी के द्वारा कराया—

सबद-सबद सब कोई कहैं, ओ तो सबद विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि-परखि करि लेह॥ —कबीर-बीजक ॥ 35 ॥

सिद्ध और योगी बौद्ध-धर्म के 'वज्रयान' के पश्चात् 'ताराकृत्या' आदि के तांत्रिक पूजा के बल पर भारत की भोली-भाली सरल हृदया जनता को अपनी ओर आकर्षित कर अंधविश्वास में आबद्ध भारत को सरलता सहजता एवं सर्वग्राह्यता की परंपरा से अनुसृत करने वाले संकटाकीर्ण परमपुनीता भारत की भूमि पर निर्भीकमना गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ जिन्होंने तंत्रवाद और मूर्तिपूजा का मुक्त स्वर से खण्डन किया था। कबीर ने उसी परंपरा में नाथों के एकेश्वरवाद, सूफियों के प्रेम की तीव्रता, माधुर्य-भक्ति की उपासना, वैष्णवों की अहिंसा, गाँधीवादी-दर्शन से **'तू कहत कागद की लेखी, में कहत आँखिन देखी'** से राष्ट्र को अप्राकृतिक और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार कराने और साधक को अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करने का नया दर्शन दिया। कबीर ने तंत्र और रसायन से अन्तर्हित प्रवृत्तियों के अन्तःप्रकाशन की क्षमता को शान्त और निश्छल सम्बन्ध से जोड़ा है।

कबीर ने हठयोग की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए योग-मनोविज्ञान के द्वारा हठयोगी साधना के चारों अंगों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों द्वारा चित्त की अवस्थाओं का निरूपण किया है—

साँचा सबद कबीर का हृदय देख विचार।
चित देके समुझै नहीं, मोहिं कहत भये जुग चार॥ —कबीर-बीजक ॥ 74 ॥

1. **आसन**—प्राणायाम के अभ्यास के लिए स्थिर होकर बैठने का आसन है। ये मुख्य चार आसन हैं—सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन।

2. **प्राणायाम**—आसान की स्थिति के बाद मन के साथ प्राण का संबंध जुड़ जाने की स्थिति प्राणों का आयाम प्राणायाम के रूप में विदित है। प्राणवायु के निकल जाने पर मन ही नहीं रहता। शरीर में भेद और श्लेष्मा के आधिक्य से प्राणायाम से कष्ट होता है। अतः प्राणायाम के पूर्व षटकर्म के विधान से पूरक कुंभक और रेचक क्रियाओं से बँधों और मुद्राओं से सम्बन्ध स्थापित होने पर निर्गुणिया ब्रह्म की अनंत सत्ता का संकेत मिलता है—

पण्डित मिथ्या करह विचारा, ना वह सृष्टि न सिरजनहारा।
जाति सरूप काले नहिं उहवा, वचन न आदि सरीरा॥

सर्वात्मवाद की झलक कबीर के सर्वश्वल्विदं ब्रह्म; और ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या के आंतरिक सौन्दर्य का प्रस्तुतिकरण करती हैं **आपुहिं देवा, आपुहिं पाती, आपुहिं कुल आपुहिं हैं जाती।**

कबीर का ब्रह्म प्राणायाम की स्थितियों से जुड़ी सर्वव्यापी और अर्न्तयामी बन भारतीय ब्रह्मवाद के अनिवर्चनीय गुणातीत निर्गुण-ब्रह्म की आस्था बन जाती है। कबीर ने रेचक क्रियाओं के माध्यम से यौगिक क्रियाओं से परमतंत्र, परमपद, सहज, सुन्न, ज्ञान, अनंत, सखि, उन्मन, गगन आदि नामों का उल्लेख कर समस्त सृष्टि के परोक्ष अव्यक्त सत्ता से मन को जोड़ा है। स्थिरप्रज्ञ की जिज्ञासा के अव्यक्त स्वरूप को व्यक्त किया है।

कबीर ने योग मनोविज्ञान में योग साधना के षटचक्र विधान इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, आदि सभी क्रियाओं को स्वीकारते हुए सिद्धों एवं नाथों द्वारा, अनुमोदित सहजयोग से प्रतिभाशाली स्पष्ट विचारों वाले फक्कड़ नेता के रूप समरस भाव में सबकी आत्मा को शांति के अखंड, आनंद आप्यायित होकर अद्वैतवादी परंपरा में माया और चिंतन में जागतिक एकत्व की भावना से अपने तत्वज्ञान को लोक-कल्याणार्थ जोड़ा। कबीर ने प्राणायाम से वाममार्गी सिद्धों की तामसिक साधना के द्वारा ब्रह्मज्योति को जागृत कर इन्द्रिय प्राण, नाड़ी-साधना, शून्य, सहज, चक्रभेदन तथा कुंडलिनी उत्थापन की प्रक्रियाओं को ग्रहणकर नाथसंप्रदाय को ग्रहण किया। मन को संयमित करते हुए इंद्रिय-निग्रह द्वारा ईश्वरोपासना में बाह्याचारों का विरोधकर तत्व-दर्शन से जनमानस को योग-दर्शन की परिकल्पना दी—

केसो कहा बिगाड़िया, जो मूड़े सौ बार।
मन को काहे न मूड़िये, जामे विषय विकार॥

3. मुद्रा—प्राणवायु को अपान क्रिया द्वारा सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट कराने के लिए कुण्डलिनी उद्‌बुद्ध करनी पड़ती है। कुण्डलिनी के द्वारा योगी मोक्षद्वार को खोलता है। यही दस द्वार के द्वारा **"अपनपौ धीर"** स्वयं की स्थिर, दृढ़ निश्चय आत्म-परिचय से जोड़ा है—

दस अवतार निरंजन कीजै सो अपना नहीं कोई॥

दसों अवतारों द्वारा अर्थात् परम दार्शनिकता के लक्ष्य प्राप्ति **"हरि में पिण्ड और पिण्ड में हरि"** की तरह जीव और ब्रह्म के तादात्म्य ज्ञान द्वारा भेदाभेदा की प्रक्रिया में मुद्रा की स्थिति को जोड़ती है। सूफी मत का प्रभाव भी ईश्वरोमुख प्रेम के रूप में **"इश्कहकीकी"** बनकर दांपत्य-प्रेम द्वारा तत्कालीन अलौकिक प्रेम-विरह की हृदयस्पर्शी मार्मिक अभिव्यंजना बन पड़ी है।

कियों सिंगार मिलन के ताई। हरि न मिले जग जीवन गुसाई।
हरि मेरो पीव हौं हरि की बहुरिया। राम बड़े मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा। सेज एक पै मिलन दुहेरो।
धन्न सुहागिन जो पिया पावै। कहि कबीरफिर जनमि न आवै॥

—कबीर ग्रंथावली परिशिष्ट पद 45

मुद्राओं की स्थिति में योग मनोविज्ञान द्वारा प्रेम के सत्य को निरूपित करते हैं। परमसत्ता के दर्शन की जिज्ञासों एवं मिलन की उत्कट अभिलाषा आत्मा में परमात्मा के विरह की तीव्रानुभूति शरीर को जलाती है। प्रेम ज्ञान से ऊँची वस्तु है। प्रेम में अन्तर्जगत का अबाध प्रेम बहिर्जगत से भी सामंजस्य स्थापित करता है। **'बहुरिया, दुलहनि, सती, विरहनि आत्मा कन्त, पति, भतरि, ननद के वीर, बालम, लाल पीव** परमात्मा के प्रतीकों के द्वारा कबीर ने अलौकिक प्रेम की व्यंजना मनोवैज्ञानिक आधार पर की है। मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी शक्ति जो साढ़े तीन वलय लपेटे सोई है, साधना द्वारा जाग्रत होने पर षटचक्रों को भेद न करती हुई सहस्रार-चक्र तक पहुँचती है जहाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का संगम होता है। वही ब्रह्मरंध से अमृत झरता है जिसका पानकर योगी अजर-अमर हो जाता है। यही ब्रह्मज्योति के दर्शन होते हैं। यही अनहद नाद की आज्ञा-चक्र जग उठती है। कबीर ने सूर्य, चन्द्र, गंगा, जमुना (इड़ा-पिंगला नाड़ियो), गगन, औंधा कुँआ, तुरही आदि प्रतीकों द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति में योग-मनोविज्ञान के सुंदर फलक को प्रस्तुत किया है—

गंगवीर मोरी खेती बारौ, जमुन तीर खरिहानौ।

इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ की गंगा-यमुना है। इनमें प्रवाहित प्राणों के द्वारा ही लोक व्यवहार की खेती-बारी और खलिहान अर्थात् प्रेम के जागतिक स्वरूप का जन्म होता है—

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाणि को हँसा पीवै, बिरला आदि विचारि॥

आकाश सहस्रार-चक्र का, औंधा कुवाँ ब्रजरंध का पाताल मूलाधार चक्र का, पाणि ब्रह्मरंध से स्रवित अमृत तथा हंस जीवन्मुक्ति आत्मा का शब्द-भेदन करता हुआ प्रेमी और प्रेमिका के दांपत्य सूत्र में एकाकारिता की स्थिति में ब्रह्मभाव को पाता है।

देवर, जेठ, ससुर, ननद, सास, जमाई प्रेम में बाधक बन माया-मोह के बंधन में बँधकर माई माया जमाई दामाद (अहंकार) देवर (संशय), जेठ (भ्रम), ससुर (अज्ञान), नगर के लोग (विषय-विकार) आदि प्रतीकों की अभिव्यंजना में प्रेम के बाधक तत्व बन जाते हैं—

धीरैं धीरैं खाइवौं, अनत न जाइवौं।
राम, राम, राम रमि रहिबौ॥
पहली खाई आई माई, पीछैं खैहू सगौ जवाई॥
खाया देवर खाया जेठ, सब खाऊ ससुर का पेट॥
खाया सब पटण का लौग, कहै कबीर तब पाया जोग॥

प्रेम योग-मनोविज्ञान की पराकाष्ठा है। दर्शन का अंतिम सत्य भी। पाई, तुरिया, बाँनि, ताना-बाना कूँच, करघा आदि प्रतीकों से कबीर ने आध्यात्मिक साधना की प्रक्रिया में जुलाहा-कर्म' से गृहीत प्रतीकों से ईश्वरीय प्रेम से लौकिक प्रेम की व्यंजना में योग साधना की अवस्थाओं एवं अनुभूतियों की चमत्कारपूर्ण अभिव्यंजना की है—

मन मेरौ रहटा रसनां पुरइया।
हरि कौ नांउ लै-लै काति बहुरिया॥
चारि खूँटी दोउ चमरख लाइ, सहजि रहटवा दियौ चलाई।
सासि कहै काति बहू ऐसैं, बिन कातैं निसतरिबौं कैसें।
कहै कबीर सूत झलकाता, रहटां नहीं परम पददाता॥

नादानुसंधान

प्रेम की तीव्रता में योग मनोविज्ञान कुंडलिनी को जागृत कर जिन क्रियाओं को क्रियान्वित करता है षटचक्र साधना द्वारा कुंडलिनी को जगाता हुआ उर्ध्वगामी होकर षटचक्रों का भेद न कर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार चक्र की ओर जाती हुई ब्रह्मज्योति से साक्षात्कार करती है। मूलाधार चक्र में स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेट कर सर्पिणी की भाँति कुंडलिनी में स्थित त्रिकोण के ऊपर चार दल कमल बनाती है। यही मूलाधार चक्र से नाभि से नीचे लिंग स्थान पर द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठान चक्र छः दलों से युक्त सिंदूरी आभा से दीपित उज्जवल प्रकाशमय महायज्ञ प्राण और हंस के स्थान पर प्रजापति देवता के रूप में प्रेम का संगम बन पड़ता है। तदन्तर मणिपूरक चक्र को भेदते हुए दस दल वाले कमल से संयुक्त नीले मेघ के समान स्वच्छ और उज्जवल दीपित प्रकाश में विष्णु के रूप में शून्य के अनिवर्चनीय सत्ता से जुड़ जाती है—

बसती न सुन्यम सुन्यम न बसती अंगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर यह बालक बोलै, ताका नाम धरहुगै कैसा॥

यही लौकिक प्रेम का प्रेम रस हृदय देश में स्थित 12 दल वाले कमल की पंखुड़ियों से अनाहत चक्र में प्रवेश करती हुई बन्धूक पुष्प जैसे दूध के श्वेत रंग से संयुक्त हो अष्टदल कमल और सर्वकामनाओं की पूर्ति करता हुआ शिवयुक्त नित्य जीवस्थान को प्रपत्तिवाद से जोड़ती है। पुन: सोलह दल वाले कमल के आकार वाला कण्ठ स्थान से मिलकर महाप्रभावी, मन को शुद्धि देने वाला, धूम के से वर्ण से युक्त नित्य जीव का स्थान लेती है। यहीं जीवात्मा विशुद्धि चक्र का अनुसंधान करता है। तदन्तर यही प्रेम-रस अभिसिंचित होता हुआ भृकुटियों के मध्य में विराजमान हो रक्तवर्णी दो दलों के पत्तों से संयुक्त मोक्षदायक परमतीर्थ प्रणव नामक महाबीज की सृष्टि करता है। अंतिम चरण में यह चक्र दशम द्वार को पूर्ण करता हुआ षटचक्रों को भेदकर शून्य चक्र में जीवात्मा को पहुँचाता है, जहाँ प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होता है। **सहस्त्रार चक्र तक पहुँचे हुए योगी का चित्र व्युत्थान काल में समाधि टूटने के बाद वासना का शिकार हो जाता है, परन्तु सुरति कमल में विलास करने वाले सन्त का चित्त ऐसे खतरे से निश्चन्त रहता है।** *—हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर पृ. 45*

तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति मैं सार।
शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार॥

यही नाद चित्त की परमावस्था है। प्रेम की उत्कट तीव्रता में अनुरक्ति बन जाती है। पहले तो शरीर के भीतर समुद्र-गर्जन, मेघ गर्जन, भेरी, झर्झर आदि का-सा शब्द सुनाई देता है। फिर मर्दल शंख घंटा, काहल की-सी आवाज सुनाई देती है और अन्त में किंकिणी वंशी, भ्रमर और गुंजार सी मधुर ध्वनि सुनाई देने लगती है। ..... योगी का नादासक्त चित्त नाद में ही रम जाता है, वह दुनिया के किसी और विषय की परवाह नहीं करता।

—डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर (पृ. 46-47)

ब्रह्मरंध्र में इड़ा-पिंगला, सुषुम्ना का संगम होता है, उसे त्रिवेणी कहते हैं, उस संगम-स्थल तक पहुँचने के लिए नाद-बिन्दु ही नाव है जिसका कर्णधार राम का नाम है। नाद को प्रकाश स्वरूप, बिन्दु को उसकी क्रिया अथवा तेज कहा गया है।

अरध-उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।
षटचक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट॥
नाद व्यंद की नावरी, रांम नांम कनिहार।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार॥ **—कबीर गंथावली पद 18**

कबीर ने योग-मनोविज्ञान में काव्य चादर पैबन्दों से जोड़कर नहीं अपितु आत्मसात किए हुए भावों एवं विचारों के ताने-बाने से बुनी हुई **'इकताई चदरिया'** को जतनपूर्वक ओढ़कर माया पर नाच उठते हैं—

नाचु रे मेरे मनमत्त होय
राहु-केतु नवग्रह नाचै जन्म-जन्म आनंद होई।
गिरी समुंदर धरती नाचै, लोक नाचै हंस रोइ।
सरस बलाका मन मेरौ नाचै, रीझै सिरजन हारा॥

कबीर ने योग-दर्शन में भाव तत्व के प्रेम को **'मसि कागद छूओ नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ—चारिउ जुग को महातम, मुख ही जनाहि बात'** । के आधार पर कहीं किन्तु वेदांत, तर्कशास्त्र, वैराग्य विद्या, जोगी-चिंतन अघोर शास्त्र तंत्र, ज्योतिष तसव्वुफ और मलामत साधनाओं के वे बहुत बड़े पंडित थे । उन्होंने सांसारिक विषयों को चारिउ जुग को महातम कहकर गूढ़ साधना की प्रक्रिया में इलहाम और अनहद की भूमिका में निर्भीक साहस का परिचय दिया । वस्तुत: सन्त साहित्य में जाज्वल्यमान यह नक्षत्र आज भी संत साहित्य की अध्येताओं को अपनी ओर बरबस खींचता है । कबीर के चुंबकीय व्यक्तित्व के कायल टैगोर, द्विवेदी और जाफरी से लेकर लिंडा हेस निनेल गेफुरोबातक हैं—कुमार गंधर्व की शास्त्रीय गायकी से लेकर लोक-परंपरा में वह आज भी अविच्छिन्न रूप से मौजूद है । मुक्तिबोध के शब्दों में एक 'नक्शा' है । इस नक्शे को दिमाग की जमीन तक लाना बहुत कठिन था, यह कबीर की विवशता थी । दु:ख की बात तो यह है कि आज भी हमारे हाथों में नक्शा है, लेकिन चेतावनी की भाषा नहीं है । कबीर का सच आज भी धर्म के नाम पर बौराए लोगों के लिए देहहीन पुकार हैं ।

कबीर का मनोविज्ञान योग-दर्शन की सुन्दर पीठिका है ।

● ●